

जैन दर्शन और विज्ञान में जीव विकास

-डॉ. सोहनराज तातेड़

जैन दर्शन में जीव सम्बन्धी विशद् विवेचन मिलता है तथा जीव विकास को परिभाषित करने का गहन प्रयास हुआ। जैव-वैज्ञानिकों के पास जीव से सम्बन्धित विस्तृत ज्ञान है फिर भी जीव विकास को जैन दर्शन की तुलना में प्रस्तुत करने में कठिनाई महसूस करते हैं।

● जीव के लक्षण

जीव-विज्ञान में जीव के जिन लक्षणों का वर्णन किया गया है उसका वर्णन जैन दर्शन में भी किया गया है। दोनों दृष्टियों से जीव लक्षण की जानकारी करनी अपेक्षित है।

(a) वैज्ञानिक दृष्टिकोण

प्रत्येक जीव में एक प्रकार का रसायन पाया जाता है जो कि एक ही प्रकार की रासायनिक क्रिया करता है। ये रसायन एक युनिट (Unit) में व्यवस्थित तरीके से रहते हैं जिसे कोशिका कहते हैं। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से जीव मात्र में निम्न लक्षण पाये जाते हैं-समायोजन व्यवस्था, संवेदनशीलता, संचार व्यवस्था, उद्दीपन, चयापचय, वृद्धि, विकास और प्रजनन आदि। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार सभी जीवों में जो समान लक्षण पाये जाते हैं वे निम्न हैं :-

i. प्रजनन

यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें जीव अपनी ही जैसी प्रजाति पैदा करता है। यह दो प्रकार से होता है-योनियज(अलैंगिक) तथा अयोनियज(अलैंगिक)। अयोनियज प्रजनन पूर्व में स्थित जीव के विकसित होने से ही हो जाता है। योनियज प्रजनन दो सेक्स कोशिकाओं के द्वारा होता है। जब नर का शुक्राणु और मादा का अण्डाणु आपस में मिलते हैं तो वे मर कर एक नई कोशिका का निर्माण करते हैं उसमें आत्मा जन्म लेती है। मनुष्य पशु-पक्षी आदि इस प्रक्रिया द्वारा प्रजनन करते हैं।

ii. वृद्धि

जीव के अपने आकार का क्रमिक विकास होना वृद्धि कहलाता है। वृक्ष कुछ सरल अणुओं, पानी तथा कार्बन डाई-आक्साइड से अपना भोजन बनाते हैं तथा उनसे वृद्धि के लिए आवश्यक जटिल रसायन का निर्माण करते हैं। जबकि पशु-पक्षी अपने भोजन को ही टिश्यू की वृद्धि के लिए आवश्यक बना लेते हैं। वृद्धि निर्जीव में भी देखी जाती है, लेकिन सजीव और निर्जीव दोनों की वृद्धि में अंतर है। निर्जीव की वृद्धि उसके फलक पर एक नई पर्त जम जाने के कारण होती है जैसा कि क्रिस्टल आदि बनने में होता है।

iii. चयापचय

इस प्रक्रिया के दौरान जीव कुछ ऐसी रासायनिक प्रक्रिया करते हैं जिससे उन तत्त्वों का निर्माण होता है जो नई कोशिकाएँ बनने के लिए आवश्यक है। पुरानी कोशिकाएं नष्ट हो जाती हैं तथा नयी कोशिकाएं पैदा हो जाती हैं। इस प्रकार नई कोशिकाएं पुरानी कोशिकाओं को प्रतिस्थापित कर देती हैं।

iv. हलन-चलन

अधिकतर जीव हलन-चलन करते हैं। पौधों में भी आंतरिक हलन-चलन होता है। वे प्रकाश की ओर झुक जाते हैं।

v. संवेदन

जीव अपने चारों ओर स्थित वस्तुओं की मौजूदगी को महसूस करते हैं तथा उससे प्रभावित भी होते हैं। किसी अन्य की मौजूदगी से जीव के व्यवहार में परिवर्तन भी आ जाता है जिसे संवेदन या स्टिमुलस (Stimulus) कहते हैं। अलग-अलग जीव को अलग-अलग वस्तु की मौजूदगी प्रभावित करती

है। जैसे:-किसी अन्य की मौजूदगी में कछुआ अपने को कठोर कवच में छिपा लेता है। पौधे प्रकाश की उपस्थिति में उस ओर ही बढ़ने लगते हैं।

vi. अनुकूलन

जीवों में यह गुण है जिस कारण जीव अपने को मौजूद वातावरण में ढाल लेते हैं तथा स्वयं को उस वातावरण में जीने के योग्य बना लेते हैं। वस्तुतः अनुकूलन में जीव में स्थित जीन में ही परिवर्तन हो जाते हैं जो कि पीढ़ी दर पीढ़ी उनमें चलते रहते हैं। आज जो प्रजातियाँ उपलब्ध हैं वे जीव के इस गुण के कारण ही हैं।

(b) जैन दर्शन का दृष्टिकोण

जैन दर्शन में संसारी जीव के लक्षणों को संज्ञा, पर्याप्ति एवं प्राण के आधार पर समझाया जाता है।¹

i. संज्ञा

क्षुद्र प्राणी से लेकर मनुष्य व देव सभी संसारी जीवों में आहार, भय, मैथुन व परिग्रह इन चार के प्रति जो इच्छा पाई जाती है उसे संज्ञा कहते हैं। विशिष्ट अन्न आदि में संज्ञा अर्थात् इच्छा का होना आहार-संज्ञा है। अत्यन्त भय से उत्पन्न जो भाग कर छिप जाने आदि की इच्छा होती है उसे भय संज्ञा कहते हैं। कामसेवन रूप क्रिया की इच्छा को मैथुन-संज्ञा कहते हैं। धन-धान्यादि के अर्जन, संग्रह व संरक्षण रूप जो इच्छा है उसे परिग्रह संज्ञा कहते हैं।

ii. पर्याप्ति

इन्द्रिय आदि रूप शक्ति की पूर्णता को पर्याप्ति कहते हैं। यह छः प्रकार की होती हैं-आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा तथा मन। योनि (उत्पत्ति स्थान) में प्रवेश करते ही जीव वहाँ अपने शरीर के योग्य पुद्गल वर्णनाओं का ग्रहण या आहार करता है। तत्पश्चात् उसके द्वारा क्रम से शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा व मन का निर्माण करता है। यद्यपि स्थूल दृष्टि से देखने पर इस कार्य में बहुत समय लगता होगा ऐसा प्रतीत होता है, लेकिन सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर उपरोक्त छहों कार्य की पूर्णता वह जीव एक अंतर्मुहूर्त में पूरी कर लेता है। एक इन्द्रिय जीव की प्रथम चार (आहार, शरीर, इन्द्रिय तथा श्वासोच्छ्वास), दो इन्द्रिय जीवों से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों तक के इन चार के साथ भाषा-पर्याप्ति इस तरह पांच पर्याप्तियाँ तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के छहों पर्याप्तियाँ होती हैं।

iii. प्राण

जीव जिससे जीता है वे प्राण कहलाते हैं। वह दो प्रकार का है-निश्चय और व्यवहार। जीव की चेतनत्व शक्ति उसका निश्चय प्राण है और पांच इन्द्रियों, मन, वचन और काय ये तीन बल, आयु व श्वासोच्छ्वास ये दस व्यवहार प्राण हैं। एकैन्द्रिय (स्थावर) जीवों के स्पर्श इन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु ये चार प्राण होते हैं। द्वीन्द्रिय जीवों के इन चारों के साथ रसना इन्द्रिय एवं भाषा के साथ छह प्राण होते हैं। तीन इन्द्रिय जीवों के एक और घ्राणेन्द्रिय मिलाने पर सात, चार इन्द्रिय जीवों के चक्षु इन्द्रिय सहित आठ, असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के एक और कर्णेन्द्रिय मिलाने पर नौ तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के सभी दसों प्राण होते हैं। पर्याप्ति तथा प्राण में कुछ अंतर होता है। आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास भाषा और मन रूप शक्तियों की पूर्णता को पर्याप्ति कहते हैं और जिनके द्वारा आत्मा जीवन संज्ञा को प्राप्त होता है उसे प्राण कहते हैं। इस प्रकार इन्द्रिय आदि शक्ति की पूर्णता को पर्याप्ति कहते हैं और जीवन के जो कारण हैं उन्हें प्राण कहते हैं। इसलिए पर्याप्ति कारण है और प्राण कार्य रूप है।

(c) विज्ञान और जैन दर्शन में जीव के लक्षणों की समानता

विज्ञान में जीव के जिन लक्षणों का वर्णन किया गया है उसका वर्णन जैन दर्शन में भी किया गया है इस तथ्य से जैन दर्शन व विज्ञान की मान्यताएँ एक दूसरे के बहुत करीब प्रतीत होती हैं। जीव विज्ञान में प्रजनन, वृद्धि, चयाचपय, हलन-चलन, संवेदन तथा अनुकूलन गुण पाये जाते हैं, जबकि जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक जीव में चार संज्ञाएँ होती हैं तथा वह अपनी वृद्धि पर्याप्ति के अनुसार करता है। इन संज्ञाओं के समानान्तर वैज्ञानिक नाम निम्न प्रकार दिए जा सकते हैं-

जैन दर्शन	विज्ञान
आहार - संज्ञा	चयापचय
भय - संज्ञा	संवेदन, हलन-चलन
मैथुन - संज्ञा	प्रजनन
परिग्रह - संज्ञा	वृद्धि

इसके अतिरिक्त विज्ञान की भाषा में जिसे अनुकूलन कहा गया है उसे भी जैन दर्शन में स्वीकार किया गया है। जैन दर्शन के अनुसार काल चक्र निरंतर चलता रहता है। काल में परिवर्तन के साथ-साथ जीव की लम्बाई(अवगाहन), पृष्ठास्थियों की संख्या तथा आयु में भी परिवर्तन हो जाता है। पंचम काल के प्रारंभ में मनुष्य की औसत अवगाहना सात हाथ तथा शरीर के पृष्ठ भाग में हड्डियों की संख्या 24 थी जो कि इस काल के अंत में घटकर क्रमशः साठे तीन हाथ तथा 12 रह जायेगी। इस प्रकार जीव के अनुकूलन गुण को जैन दर्शन में उस परिवर्तन के रूप में स्वीकार किया गया है जो कालक्रम के अनुसार होता रहता है।

• जीवन का प्रारंभ और विकास

ब्रह्माण्ड में जीवन के प्रारंभ एवं उसके क्रमिक विकास के सम्बन्ध में हमें वैज्ञानिक एवं जैन दार्शनिक मान्यताओं को समझना आवश्यक है।

(a) वैज्ञानिक मान्यता

पृथ्वी पर जीव की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सबसे अधिक मान्यता रूस के जैव रसायन वैज्ञानिक ओपेरिन द्वारा प्रतिपादित परिकल्पना को मिली। उनके अनुसार लगभग पांच अरब वर्ष पहले पृथ्वी एक जलता हुआ आग का गोला थी। उसके वातावरण में जो कुछ भी उपलब्ध था वह मात्र तत्त्वों (elements) के रूप में ही था। पृथ्वी के पर्याप्त शीतल हो जाने पर कुछ योगिकों का निर्माण हुआ जिनमें कुछ सरल प्रोटीन भी थे जो जल में घुल सकते थे। फिर क्रमशः रासायनिक क्रियाओं द्वारा जटिल प्रोटीनों (Proteins) का निर्माण हुआ जो कि कार्बोहाइड्रेट्स (Carbohydrates) को उन जीवों के समतुल्य माना जा सकता है जो कुछ वायरसों में पाये जाते हैं। ये कार्बोहाइड्रेट्स स्व-जनन कर सकते हैं। इनमें विकृति (Mutation) द्वारा फिर कुछ परिवर्तन हुआ और मुक्त Chromosomes का निर्माण हुआ जो कि बैक्टेरिया में भी पाये जाते हैं। Chromosomes के साथ ही जटिल संरचना द्वारा प्राथमिक Cell nucleus का निर्माण हुआ। इन प्राथमिक कोशिकाओं (Cells) में ही सर्वप्रथम जीव के लक्षण विद्यमान हुए। इन सब प्रक्रिया में लगभग एक अरब वर्ष का समय लगा। इस प्रकार ओपेरिन वैज्ञानिक की मान्यता के अनुसार पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व लगभग चार अरब वर्ष पूर्व आया।

ओपेरिन की इस परिकल्पना को सिद्ध करने के कई प्रयास हुए हैं। स्टैनले मिलर और यूरी ने तथा कैल्विन और फौक्स ने अलग-अलग प्रयोगों द्वारा ओपेरिन के रासायनिक उद्‌विकास के सिद्धान्त को सिद्ध करने का प्रयत्न किया। वे अपने प्रयोगों में उच्च ताप (temperature) एवं उच्च विभव voltage पर कोशिका के संरचनात्मक घटकों का निर्माण प्रयोगशाला में कर सके। उससे ओपेरिन की मान्यता को बल मिला। डा.हरगोविन्द खुराना ने प्रयोगशाला में DNA के एक हिस्से का निर्माण कर दिखाया जिससे 77 Neucleoties थे। इस प्रकार DNA को भी प्रयोगशाला में बना पाना संभव हुआ। इन प्रयोगों से प्रयोगशाला में जीवन की उत्पत्ति की संभावना को भी बल मिला।

(i) प्राकृतिक चयन के द्वारा जीवन का विकास

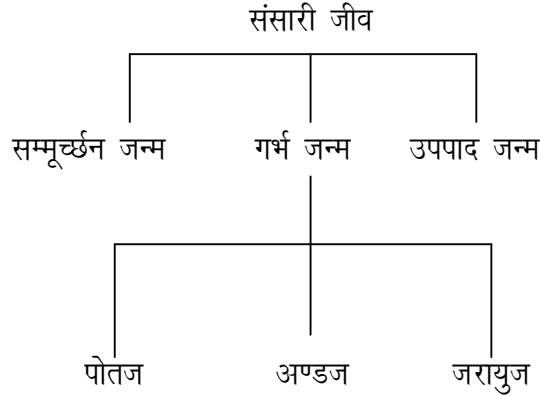
विज्ञान के अनुसार डार्विन के प्राकृतिक चयन के सिद्धान्त के अनुसार जीवन का विकास निम्नानुसार होता है:-²

- (a) जीवों में प्रजनन की प्रचुर क्षमता होती है तथा प्रत्येक जीव अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करता है।

- (b) जो जीव प्रकृति की अनुकूलता-प्रतिकूल परिस्थितियों को झेल लेते हैं वे ही जीवित रह सकते हैं।
- (c) अनुकूल गुणों वाले जीव की प्रजाति विकसित होकर धीरे धीरे नई प्रजाति को उत्पन्न करती है।
- (d) एक कोशिय तुच्छ जीवों के करोड़ों वर्षों के विकास से ही मनुष्य की उत्कृष्ट जाति का उद्गम हुआ।
- (b) **जैन दर्शन की मान्यता**

3.4

जैन दर्शन में जीवों का जन्म तीन प्रकार से बताया गया है:-



1. सम्मूर्च्छन जन्म

इधर उधर के परमाणुओं के मिलने से तथा विभिन्न अनुकूल वातावरण से जो जन्म होता है उसे सम्मूर्च्छन जन्म कहते हैं। जैन दर्शन में एक इन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तक के सभी जीव तथा कुछ पंचेन्द्रिय जीवों का जन्म सम्मूर्च्छन रीति से होना बताया गया है।¹ इनमें नर व मादा का स्पष्ट भेद नहीं होता है। इनमें मैथुन की इच्छा होना नपुसंक वेद मोहनीय कर्म का कार्य है।

i. ऐकेन्द्रिय जीव

इनके मात्र एक स्पर्श इन्द्रिय होती है जैसे :- पृथ्वीकाय, अपकाय, तैजसकाय, वायुकाय एवं वनस्पतिकायिक जीव। वनस्पति के भेद-मूलबीज, अग्रबीज, पर्वबीज, कन्दबीज, स्कन्धबीज, बीजरूह, सम्मूर्च्छन सात भेद होते हैं, इन्हे स्थावर प्राणी कहा जाता है, जो कि एक स्थान पर स्थिर रहते हैं, चल फिर नहीं सकते हैं। पृथ्वीकाय, अपकाय, तैजसकाय, वायुकाय प्रत्येक के सात लाख योनियों होती हैं। वनस्पति के 10 लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, 14 लाख साधारण वनस्पतिकाय कुल 24 लाख जीवायोनियों होती हैं।

ii. द्वीन्द्रिय जीव

इनके स्पर्श एवं रसना दो इन्द्रियों होती हैं-जैसे :- लट, केंछुआ, जोंक, शंख आदि। ये जीव दो लाख योनियों में जन्म लेते हैं।

iii. त्रीन्द्रिय जीव

इनके स्पर्श, रसना, ध्राण तीन इन्द्रियों होती हैं जैसे :- कानखजूरा, चींटी, बिच्छू, खटमल, जूं, घूण(घून, सुरैरी) इन्द्रगोप, गिंजाई आदि। किन्तु चींटी आदि के अण्डे देखे जाते हैं, अतः इनका गर्भ जन्म होने की शंका जैनाचार्यों ने स्वयं ने की है। परन्तु जैनाचार्यों ने ही उसका समाधान देते हुए स्पष्ट किया है कि अण्डों की उत्पत्ति गर्भ में ही होती है, ऐसा नियत नहीं है अर्थात् चींटी के अण्डे होते हुए भी चींटी सम्मूर्च्छन जीव है।⁶

iv. चतुरिन्द्रिय जीव

इनके स्पर्श, रसना, ध्राण, चक्षु चार इन्द्रिय होती है जैसे :- भौरा, बर्र, मक्खी, मच्छर, डांस, टिड्डी आदि। ये जीव दो लाख जीवोयोनियों में जन्म लेते हैं।

v. पंचेन्द्रिय जीव

इनके स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत पांचों इन्द्रिय होती हैं, जैसे :- मच्छली, कैंछुआ, मेंढक तथा लब्ध्य पर्याप्तक मनुष्य। ये जीव 4 लाख योनियों में जन्म लेते हैं। असंज्ञी लब्ध्य पर्याप्तक मनुष्य का शरीर अंगुल के असंख्यात भाग मात्र रहता है और यह जन्म लेने के बार शीघ्र नष्ट हो जाता है। इसकी उत्पत्ति मल, मूत्र, वीर्य, कफ, कान, नाक व दांत के मैल एवं अन्य अपवित्र स्थानों में तत्काल हो जाती है।

एक इन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच जीव त्रस प्राणी कहलाते हैं जो चल फिर सकते हैं।

2. गर्भ जन्म

गर्भ जन्म वाले प्राणी पंचेन्द्रिय संज्ञी होते हैं। इस जन्म वाले जीवों को तीन भागों में बांटा गया है:-

- i. पोटज
- ii. अण्डज
- iii. जरायुज

i. पोटज

जिनके शरीर के साथ गर्भ में थेली आदि का कोई आवरण नहीं रहता है तथा जो उत्पन्न होते ही चलने लगते हैं, पोटज प्राणी कहते हैं, जैसे:- सिंह, व्याघ्र आदि।

ii. अण्डज

अण्डे से जिनका जन्म होता है, उन प्राणियों को अण्डज कहते हैं, जैसे:- पक्षी, कबूतर, चीड़ी, मोर, चील आदि।

iii. जरायुज

जिनके शरीर के साथ मांस की थेली का आवरण होता है उन्हें जरायुज कहते हैं, जैसे:- मनुष्य, गाय, भैंस आदि।

संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक सम्मूर्च्छन तिर्यच जैसे:- मच्छली, कैंछुआ, मेंढक आदि जीवों के संयमासंयम धारण करने की योग्यता का उल्लेख जैनागम में मिलता है।⁷ तिर्यच पंचेन्द्रिय के चार लाख योनियाँ होती हैं। मनुष्यों के 14 लाख जीवायोनियाँ होती हैं।⁸

3. उपपाद जन्म

देव तथा नारकियों की उपपाद शय्याएं निश्चित हैं। उन पर आत्मा के प्रदेश जब पहुंचते हैं तब अन्तर्मुहूर्त में पूर्ण रचना अपने आप हो जाती है। देव तथा नारकी के चार-चार लाख योनियाँ हैं।⁹ अचित्त योनि देव तथा नारकी दोनों के होती है। चारों प्रकार के सब देवों के रूप से सचित्त, अचित्त, शीत, उष्ण, संवृत्त (ढकी हुई) विवृत्त (खुली हुई) आदि के भेद से सब योनियाँ होती हैं।

जैन धर्म के अनुसार सभी जीवों में एक समान शक्ति एवं गुणों वाली आत्मा रहती है जिसके ऊपर कर्मों का आवरण चढ़ा रहता है। जो जीव परिस्थितियों के अनुसार जैसी प्रतिक्रिया करता है उसके उसी प्रकार के कर्मों का संचय होता है तदनुसार उसे वैसा शरीर/पर्याय मिलता है।¹⁰ ऐकेन्द्रिय जीव(एक कोशीय) भी अपने पुरुषार्थ के द्वारा त्रस(जन्तु जगत) गति पा सकता है। कीड़े, मकोड़े, जानवरों का शरीर भी प्राप्त कर सकता है तथा सत्प्रयत्नों से मनुष्य का दुर्लभ शरीर भी प्राप्त कर सकता है।

(c) जीव विकास और मस्तिष्क का सम्बन्ध

जैन दर्शन के अनुसार जीव का स्वभाव ऊर्ध्वगामी है, वह निम्नतम अवस्था से उच्चतम अवस्था तक विकास करना चाहता है। जीव की निम्नतम अवस्था निगोद है उस अवस्था में जीव को एक स्पर्श इन्द्रिय ही प्राप्त होती है। विकास क्रम में जीव द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय शरीर धारण करता है। फिर पंचेन्द्रिय समनस्क मनुष्य योनि धारण करके सम्यक् पुरुषार्थ से मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक विकास करता हुआ जीव मोक्ष प्राप्त कर सकता है जो कि जीव की उच्चतम अवस्था है। इसका दूसरा पक्ष यह है कि निम्न स्तर का जीव उच्च स्तर की विकसित योनि धारण नहीं

कर सकता, क्योंकि उसमें उस योनि के अनुरूप ज्ञान नहीं है। इसलिए जीव को योनि दर योनि ही ऊर्ध्वारोहण यात्रा करनी पड़ती है। एक वृक्ष का जीव सीधा मनुष्य योनि में प्रवेश नहीं कर सकता, उसमें मनुष्य के अनुरूप ज्ञान नहीं है।

जीव विकास और ऊर्ध्वारोहण जीव के कर्म क्षय का परिणाम है। ज्ञानावरणादि कर्मों के क्षय से जीव में उत्तरोत्तर अधिक ज्ञान प्रकट होता है अर्थात् ऐकेन्द्रिय में न्यूनतम तथा मनुष्य में अधिकतम ज्ञान होना चाहिए। भौतिक शरीर में मस्तिष्क ज्ञान का केन्द्र है। अतः यह अपेक्षा की जाती है कि जीव की उत्तरातर योनियों में मस्तिष्क अधिक उन्नत होना चाहिए। इस प्रकार विभिन्न प्राणियों में मस्तिष्क के अध्ययन से जीव विकास सिद्धान्त प्रमाणित होता है।¹¹

● तुलनात्मक विवेचना एवं निष्कर्ष

एक कोशिय (Cell) प्राथमिक जीव से अनेक जीव-जन्तुओं(प्रजातियों) के निर्माण से हमें इतना समझ लेना चाहिए कि कुछ प्राथमिक जीव (एक कोशिय) आपस में संयोग करके (फ्युशन करके) अपना अस्तित्व तो समाप्त करते रहे तथा नये वातावरण में नयी योनि बनाते रहे जिनमें नयी प्रजाति के जीवों का जन्म होता रहा। वस्तुतः एक इन्द्रिय जीव से दो, तीन इन्द्रिय आदि पैदा नहीं हुए बल्कि कुछ ऐकेन्द्रिय जीव अपना अस्तित्व समाप्त करके नये वातावरण में दो इन्द्रिय आदि जीवों के जन्म लेने योग्य नई योनि का निर्माण करते रहे।

विज्ञान ने कीट पतंगों की लगभग दस लाख प्रजातियों को खोज निकाला है। जैन दर्शन के अनुसार ये कीट पतंगें दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय या चार इन्द्रिय हैं जिनकी सम्मिलित योनियाँ छः लाख हैं। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इन प्रजातियों की संख्या लगभग 80-90 लाख हो सकती है जो कि छः लाख से कहीं अधिक है। इससे स्पष्ट होता है कि एक ही प्रकार की सचित्त, अचित्त, शीत, उष्ण आदि योनि से अनेक प्रजातियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। जैन दर्शन के अनुसार उतनी ही प्रजातियाँ पैदा हो सकती हैं जितनी योनियाँ तथा कुल-कोटि हैं और काल उनके अनुकूल है। उनसे हटकर किसी अन्य प्रजाति का जन्म संभव नहीं है। जैन दर्शनानुसार योनियाँ की संख्या 84 लाख है तथा इन योनियों से 199.5 लाख कोटि प्रजाति ही पैदा हो सकती है।

कुछ की ऐसी मान्यता है कि मनुष्य गति मिलने से पहले यह जीव चौरासी लाख योनियों में भटकता है अर्थात् जीव विभिन्न पर्यायों में जन्म लेता है। जीव विकास की वैज्ञानिक सोच के अनुसार जाति का विकास सृष्टि की लाखों प्रजातियों के क्रमिक विकास की चरम परिणति है। इसलिए मनुष्य अपनी भ्रूणावस्था में अपने पूर्वज प्रजाति समुदायों मत्स्य वर्ग, अभयचरों, सरीसृपों, पक्षियों, स्तनधारियों के भ्रूण से समानता दर्शाता है।

आजकल कतिपय वैज्ञानिक जन्तुओं को गुलाब की कल्म जैसा उगाकर क्लोनिंग की क्रिया से उसे क्रांतिकारी बताने और बनानेमें जुटे हुए हैं। परन्तु यह क्रिया तो छोटे-छोटे जीवों, वनस्पतियों आदि में पहले से पाई जाती है। इस क्रिया को जैन धर्म ग्रन्थों में सम्मूर्च्छन जन्म के रूप में उल्लेखित भी किया गया है।

आधुनिक शरीर विज्ञान के अनुसार सभी जीवों में जीवन के मूलभूत कण “जेनेटिक कोड” एक समान होते हैं।¹² जैनेटिक कोड के क्रम परिवर्तन से ही अमीबा से लेकर मनुष्य तक की अलग-अलग प्रकार की जीव जातियाँ जन्म लेती हैं। इसी प्रकार जैन दर्शन की मान्यता है कि सभी जीवों में एक समान आत्मा है, एक ही क्षमताएँ हैं परन्तु उनके विभिन्न कर्म ही उसे विविध प्रकार के शरीर दिलाते हैं। जीवन की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विज्ञान की मान्यता है कि “जीवन के मूलभूत अणु DNA की रचना बिना enzyme के संभव नहीं है तथा enzyme स्वयं DNA के द्वारा ही बनता है”¹³ अर्थात् जीव की उत्पत्ति या निर्माण के सम्बन्ध में विज्ञान अनिश्चित है जो कि जैन दर्शन के जीव का “अनादि निधन” होने का सिद्धान्त पुष्ट करता है।

(a) जैसा कर्म, जैसा जीन, वैसा व्यक्ति

एक बार गणधर गौतम ने भगवान से पूछा-

कम्मओणं भंते! नो अकम्मओ विभक्ति भावं परिणमई। कम्मओणं अओ णो अकम्म ओ विभक्तिभावं परिणमई-

भंते! विश्व में सर्वत्र तरतमता दिखाई देती है, किसी में ज्ञान कम है, किसी में अधिक इसका कारण क्या?

भगवन् बोले - “गौतम इस तरतमता का कारण है “कर्म”।¹⁴

यदि आज के जीव विज्ञानी से पूछा जाय कि विश्व की विषमता-तरतमता का क्या कारण है? वह बतायेगा, एक मात्र कारण है -“जीन”। जैसा Gene होता है Chromosome होता है आदमी वैसा ही बन जाता है, उसका स्वभाव और व्यवहार वैसा ही हो जाता है। यह जीन ही सभी संस्कार सूत्रों तथा सारे भेदों-विभेदों का मूल कारण है। विज्ञान की भाषा में कहा जाता है कि एक-एक जीन पर 60-60 हजार आदेश लिखे हुए होते हैं। कर्मशास्त्र की भाषा में कहा जाता है कि एक-एक कर्म स्कन्ध में अनन्त आदेश लिखे होते हैं।¹⁵ अभी तक विज्ञान केवल जीन तक ही पहुंच पाया है। जीन इस स्थूल शरीर का ही घटक है। किन्तु कर्म सूक्ष्म शरीर का घटक है। इस स्थूल शरीर के भीतर तैजस शरीर है, विद्युत् शरीर है, वह सूक्ष्म है। इससे सूक्ष्म है कर्म शरीर। यह सूक्ष्मतम है। इसके एक-एक स्कन्ध पर अनन्त-अनन्त लिपियां लिखी हुई हैं। हमारे पुरुषार्थ का, अच्छाइयों का, बुराईयों का, न्यूनताओं और विशेषताओं का सारा लेखा-जोखा और सारी प्रतिक्रियाएं कर्म शरीर में अंकित हैं। वहां से जैसे स्पंदन आते हैं, आदमी वैसा ही व्यवहार करने लग जाता है। कर्म का सिद्धान्त अति सूक्ष्म है। स्थूल बुद्धि से परे का सिद्धान्त है। आज के “जीन विज्ञान” ने कर्म सिद्धान्त को समझने में सुविधा प्रदान की है। जीन व्यक्ति के आनुवांशिक (heredity) गुणों के संवाहक है।¹⁶ व्यक्ति-व्यक्ति में जो भेद दिखाई देता है, वह जीन के द्वारा किया हुआ भेद है। प्रत्येक विशिष्ट गुण के लिए विशिष्ट प्रकार का जीन होता है। यह आनुवांशिकी (heredity) के नियम कर्मवाद के संवादी नियम है।¹⁷

व्यक्तिगत भेद का मूल कारण है ‘कर्म’। सारे विभेद कर्मकृत है (कम्मणा उवाही जायइ)।¹⁸ यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाये तो आनुवांशिकता, जीन और रासायनिक परिवर्तन-यह तीनों सिद्धान्त कर्म के ही सिद्धान्त हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी लिखते हैं “एक दिन यह तथ्य भी अनुसंधान में आ जायेगा कि जीन केवल माता पिता के गुणों या संस्कारों का ही संवहन नहीं करते, किन्तु यह हमारे किये हुए कर्मों का भी प्रतिनिधित्व करते हैं।¹⁹ स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर की यात्रा अपने आप में बड़ी महत्वपूर्ण है। यह स्थूल शरीर सूक्ष्म कोशिकाओं (Biological cells) से निर्मित है। इस शरीर में 100 खरब कोशिकाएं हैं। इन कोशिकाओं को जैन दर्शन के प्रतिपादन के संदर्भ में समझें कि सूई की नौक टिके - उतने से स्थान में निगोद के अनन्त जीव समा सकते हैं।²⁰ निगोद वनस्पति का एक विभाग है - यह सूक्ष्म रहस्यपूर्ण बात है। पर आज का विज्ञान भी अनेक सूक्ष्मताओं का प्रतिपादन करता है।

अतः उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि जैन दर्शन का जीव विकासवाद विज्ञान सम्मत है, और विकास क्रम भी तर्क सम्मत है। विज्ञान अभी तक मन, चेतना और आत्मा के रहस्य को नहीं समझ पाया है। अतः अब तक इस विषय पर विज्ञान की कोई निश्चित अवधारणा नहीं बन पाई है।

सलाहकार,
जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय,
लाडनू (राजस्थान)

संदर्भ सूची-

- 1 पन्नवणा, जैनागम पृ. 3.14
- 2 Biology XII, II, 1995, N.C.E.R.T.New Delhi, Darwins idea of Natural Selection P.896-897
- 3 तत्वार्थराजवार्तिक, भट्टअकलंक, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, अध्याय-2,सूत्र 31
- 4 सर्वार्थसिद्धि, आचार्य पूज्यपाद, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, अध्याय-2,सूत्र 31
- 5 गोम्मटसार जीव काण्ड जीव तत्व प्रदीपिका टीका गाथा सं.1861
- 6 धवला पुस्तक - 1,पृ. 346
- 7 धवला पुस्तक-5, खण्ड-1,भाग-6,सूत्र-234
- 8 मूलाचार, आचार्य बट्टकरे, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, गाथा संख्या - 226
- 9 तिलोयपण्णत्ति अध्याय-8,गाथा 700-701
- 10 समण सुत्तं सूत्र 658 एवं 659 पृ.209
- 11 जीव विकास और मस्तिष्क-डा.नारायणलाल कछारा
- 12 (Cytology,Genetics and plant breeding molecular biology by P.K.Gupta Published by Rastogi Publication, Merut P.69
- 13 Biology XI, N.C.E.R.T.,New Delhi, 1989, page 40
- 14 भगवती सूत्र 12/5
- 15 भगवती सूत्र 12/ 5
- 16 मनोवैज्ञानिक और शिक्षा सन् 1960, पृ.161
- 17 कर्मवाद-युवाचार्य महाप्रज्ञ(वर्तमान आचार्य महाप्रज्ञ) प्रकाशक-आदर्श साहित्य संघ, चुरु पृ. 137
- 18 आचारांग 1.3.1
- 19 कर्मवाद - आचार्य महाप्रज्ञ - अतीत को पढ़ो भविष्य को देखो पृ. 165
- 20 कर्मवाद - आचार्य महाप्रज्ञ, पृ.152 भगवती सूत्र